भारतीय भाषाओं के अस्तित्व और अस्मिता का सवाल

अतुल कोठारी

भारत की विविधता जिन संदर्भों से परिपूर्ण होती है, या हजारों वर्षों से संरक्षित चली आ रही है, राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को अक्षुण बनाने में जो अनन्य सहयोग दिया है, उसमें भारतीय भाषाओं की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति के बेतहासा विस्तार ने भारतीय भाषाओं, संस्कृति, धर्म और समाज को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाया लेकिन उससे भी अधिक नुकसान स्वतंत्रता के बाद अपने लोगों द्वारा सरकारी संरक्षण में पहुंचाया गया । यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि भारत की पहचान को सुनियोजित तरीके से न सिर्फ ठेस पहुंचाई गई है, बल्कि समाज का एक बड़ा तबका विचारधारा के आवरण में उसे लील जाने की मुहिम चलाता रहा है। सवाल यह उठता है कि जिस सांस्कृतिक पहचान की बदौलत हम विश्व में श्रेष्ठ थे उसे खत्म करने की साजिश अपने लोगों के द्वारा क्यों रची गई? जिन भारतीय भाषाओं, संस्कृति के विविध आयामों, धर्म और अध्यात्म के अपरंपार भंडार और जीवनशैली का विश्व में डंका बजता था उसे दीमक की तरह खाने की कोशिश क्यों की गई? ये सवाल सिर्फ सवाल नहीं हैं, यह हमारी पहचान का संकट है, जिसे गहराई से समझने की जरूरत है।

भारत पर जितने भी विदेशी आक्रमण हुए सभी ने हमारी सांस्कृतिक पहचान को निशाना बनाया । सबसे पहले मुगलों ने हमारी भाषिक, सांस्कृतिक और धार्मिक एकता को अपनी प्रशासनिक तानाशाही से कुचलने का हरसंभव प्रयास किया और बहुत हद तक कुचला भी । उसके बाद अंग्रेजों ने भी अपनी तरह से वही रास्ता अपनाया बल्कि यह कहा जाय कि कई मामलों में उससे भी अधिक खतरनाक । अब प्रश्न उठता है कि फिर आजादी के बाद हमारे अपने लोगों के द्वारा इन भाषाओं को बचाने के लिए तथा अपनी सांस्कृतिक पहचान और धरोहर को संवर्धित रखने के लिए क्या किया गया ?

स्वाधीनता के बाद जब भारत की एक भाषा और क्षेत्रीय भाषाओं की बात आई तो उनके सामने अँग्रेजी को अधिक महत्व देते हुए इस तरह से जोड़ दिया गया या उसका ऐसा विवादित स्वरूप खड़ा किया गया जिसका हल निकालना आपस में लड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । भाषा के सवाल को क्षेत्रीय और राजनैतिक विवाद का विषय बना दिया गया । क्या यही हमारी स्वतंत्रता थी ? इसी के लिए हमारे पूर्वजों ने इतनी लंबी लड़ाई लड़ी ? हमारा विरोध अँग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा को लेकर नहीं है । हमारा विरोध उस मानसिकता से है जो भारतीय भाषाओं की पहचान और प्रतिष्ठा को खत्म करना चाहती हैं ।

भारत गाँवों का देश है । गाँव भारतीय संस्कृति के जन्मदाता और संवर्धनकर्ता रहे हैं । भारतीय भाषाओं को अधिक संरक्षण भी गाँवों में ही मिला है । इसलिए भारतीय भाषाओं और भाषाओं की संस्कृति को बचाने और संवर्धित करने के लिए जरूरी है कि गाँवों के सांस्कृतिक पुनरुत्थान पर विशेष चर्चा हो । प्रांतीय और क्षेत्रीय भाषाओं को साहित्य, समाज, शिक्षा, न्याय और तकनीक से जोड़ने के लिए यह जरूरी है कि प्रशासन की ओर से भी और जन-जागरुकता के माध्यम से भी एक पहल हो । मेरा मानना है कि हर कार्य की उम्मीद हम मात्र सरकार से नहीं कर सकते इसलिए सरकार एवं जन-सहभागिता के संयुक्त प्रयास द्वारा इसे आसानी से हल किया जा सकता है। प्रकारांतर से समाज का विकास और उत्थान तभी संभव हुआ है जब जन-भागीदारी और प्रशासनिक सहयोग का सम्मिलित प्रयास हुआ । एक बार फिर हमें अपनी क्षमता के अनुसार राष्ट्र के उत्थान के लिए सकारात्मक पहल करने की जरूरत है । इसके लिए जरूरी है कि आम जनमानस की अभिव्यक्ति उनकी अपनी भाषा में प्रस्तुत करने की व्यवस्थित योजना बनाई जाय । इसके लिए दो स्तरों पर प्रयास आवश्यक है । सबसे पहला प्रयास यह कि शिक्षा का माध्यम राज्यों की भाषा हो जिसे सम्पूर्ण भारत वर्ष में समान रूप से लागू किया जाय । भाषा की जो प्रणाली अभी लागू है उसमें राज्य की भाषा के साथ अँग्रेजी का प्रयोग होता है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के साथ अँग्रेजी का प्रावधान है । लेकिन इसे बदलने की आवश्यकता है । इसका नया रूप इस तरह हो सकता है कि राज्यों की शिक्षा, प्रशासन और न्याय राज्यों की भाषाओं में हो । केंद्रीय शिक्षा, न्याय और प्रशासन की भाषा देश की भाषा हो तभी समानता और संप्रभुता वास्तव में कायम हो पायेगी । अभी जो स्थिति है हर तरह से विभेदकारी है । राज्यों में शिक्षा, प्रशासन और न्याय का प्राथमिक स्तर का कार्य तो राज्य की भाषाओं में होता है लेकिन जैसे ही उच्च स्तर की बात होती है या किसी राष्ट्रीय मुद्दे की बात आती है, वहाँ अँग्रेजी अनिवार्य हो जाती है । राज्यों की भाषाओं में शिक्षित विद्यार्थियों को अनेक तरह की परेशानियों और विभेदों से गुजरना पड़ता है । अर्थात ऊपर के तबके या उच्च शिक्षा और उच्च वर्ग की भाषा अँग्रेजी है फिर कौन नहीं चाहेगा कि उसके बच्चे उच्च शिक्षा और उच्च वर्ग की भाषा से जुड़ें । यही कारण है कि आज आम जनमानस भारतीय भाषाओं को लेकर ऊहापोफ में पड़ा हुआ है।

यह विषय बहस, विचार और मतभेद का हो सकता है । लेकिन बहस सिर्फ इस पर नहीं होनी चाहिए कि ऐसा क्यों ? बल्कि बहस इस पर करने की आवश्यकता है कि इसका स्वरूप कैसा होगा। राजनैतिक इच्छा शक्ति और जन-आकांक्षा से इसे मूर्त किया जा सकता है । इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य एक बात और है कि इसका उद्देश्य अँग्रेजी विरोध नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य उस मानसिकता को खत्म करना है जो एक भारत के भीतर दो भारत का निर्माण कर रही है । समान नागरिकता के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक भाषा का होना बहुत अनिवार्य है । अतः इस दिशा में सकारात्मक पहल की महती आवश्यकता है जिससे सही दिशा में हम आगे बढ़ सकें और पूरे भारत वर्ष में समानता और बंधुत्व का वातावरण कायम हो सके ।